विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४९, माघ पूर्णिमा, १३ फरवरी, २००६ वर्ष ३५ अंक ८

धम्मवाणी

अभित्थरेथ कल्याणे, पापा चित्तं निवारये।
दन्धञ्हि करोतो पुञ्ञं, पापस्मिं रमती मनो॥
– धम्मपद ११६, पापवग्गो.

पुण्य (कर्म) करने में जल्दी करे, पाप (कर्म) से चित्त को हटाये, क्योंकि धीमी गति से पुण्य (कर्म) करनेवाले का मन पाप (कर्म) में लीन होने लगता है।

(**आत्म-कथन** भाग-१ से)

मेरा भाग्य जागा!

एक सितंबर, १९५५, मेरे जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण दिवस। माइग्रेन के सिरदर्द का असाध्य और असह्य रोग, जो मेरे सिर पर अभिशाप बन कर चढ़ा हुआ था, वही अब मेरे लिए वरदान बन गया। मैं गुरुदेव परम पूज्य सयाजी ऊ बा खिन के विपश्यना ध्यान शिविर में दस दिन के लिए सम्मिलित हुआ। शिविर में सम्मिलित होने के पूर्व की मेरी झिझक, इस झिझक से पूर्णतया मुक्त न होने पर भी उसमें सम्मिलित होना और इस शिविर द्वारा आश्चर्यजनक रूप से लाभान्वित होना –अब यह इतिहास का एक बहुचर्चित पृष्ठ बन गया है।

मूल झिझक तो इसी बात की थी कि यह बौद्ध धर्म की साधना है। इससे प्रभावित होकर कहीं मैं अपना जन्मजात हिंदू धर्म तो नहीं छोड़ दूंगा? कहीं मैं बौद्ध तो नहीं बन जाऊंगा? यदि ऐसा हुआ तो घोर अनिष्ट हो जायगा। मैं धर्मभ्रष्ट हो जाऊंगा। मेरा घोर पतन हो जायगा। बुद्ध के प्रति असीम श्रद्धा होते हुए भी बौद्धधर्म के प्रति अश्रद्धा ही नहीं बल्कि क्षुद्र भाव भी था। इस पर भी शिविर में सम्मिलित हुआ, क्योंकि गुरुदेव ने विश्वास दिलाया कि विपश्यना विद्या में शील, समाधि और प्रज्ञा के अतिरिक्त और कुछ नहीं सिखाया जायगा। इन तीनों के प्रति मेरे जैसे किसी हिंदू को ही नहीं बल्कि किसी भी धार्मिक परंपरा के व्यक्ति को भी क्या ऐतराज होता?

शील-सदाचार का जीवन जीना, समाधि द्वारा मन को वश में करना, प्रज्ञा जगा कर चित्त को जहां तक हो सके, विकारविहीन बना लेना –इन तीनों शिक्षाओं का कोई भी समझदार व्यक्ति विरोध कर ही नहीं सकता। और मुझे तो क्रोध और अहंकार जैसे मनोविकारों से छुटकारा पाना था, जिनके कारण तनावभरा जीवन जीते हुए मैं माइग्रेन का रोगी हो गया था। विकार दूर होंगे तो तनाव दूर होगा और तनाव दूर होगा तो माइग्रेन दूर होगी –यह सच्चाई मेरे लिए बहुत स्पष्ट हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त जिस परिवार में जन्मा और जिस वातावरण में पला, उसमें दुराचरण से विरत रहना और सदाचरण में निरत रहना तथा अपने चित्त को विकारों से विमुक्त रखना –जीवन में यही आदर्श उतारने का महत्त्व सिखाया गया था। अतः जब गुरुदेव ने बताया कि भगवान बुद्ध ने यही सिखाया और विपश्यना में भी यही सिखाया जायगा, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सिखाया जायगा, तब यह सुन कर मैं आश्वस्त हुआ था। फिर भी मन के एक कोने में बहुत कुछ झिझक थी ही।

बुद्ध की शिक्षा के बारे में कुछ ऐसी बातें सुन रखी थीं जिनका अनुसरण करना उचित नहीं समझता था। अतः मन-ही-मन यह निर्णय किया कि शिविर में मुझे केवल शील, समाधि और प्रज्ञा का ही अभ्यास करना है। इन तीनों के अतिरिक्त मुझे अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं करना है। इस विद्या को आजमा कर देखने के लिए शिविर में सम्मिलित हुआ हूं।

इसे तो मैं समझ ही रहा था कि बुद्धवाणी में अनेक अच्छी शिक्षाएं विद्यमान हैं, तभी यह विश्व के इतने देशों में और इतनी बड़ी संख्या में लोगों द्वारा मान्य हुई है, पूज्य हुई है। परंतु इसमें जो कुछ अच्छा है, वह हमारे वैदिक ग्रंथों से ही लिया गया है। अतः इसमें जो भी हानिकारक मिलावटें हुई हैं, वे मेरे लिए सर्वथा त्याज्य रहेंगी। इसका पूरा ध्यान रखूंगा।

शिविर के दस दिन पूरे होते-होते मैंने देखा कि मेरे गुरुदेव के कथनानुसार शील, समाधि और प्रज्ञा के अतिरिक्त वहां और कुछ नहीं सिखाया गया। इस विद्या के आशुफलदायिनी होने के दावे को सत्य होते देखा। दस दिन के अभ्यास से ही मन के विकार निकलने आरंभ हुए। इससे तनाव दूर होना आरंभ हुआ और फलस्वरूप माइग्रेन का भयंकर रोग दूर हुआ जो कि मानसिक तनाव के परिणामस्वरूप ही मुझे दुःखी बनाये रखता था। माइग्रेन के लिए ली जाने वाली अफीम की दुःखदायी सुई से भी सदा के लिए छुटकारा मिला। नींद के लिए बहुधा ली जाने वाली नशीली दवाओं से भी सदा के लिए मुक्ति मिली। जिन विकारों के जागने से मन व्याकुलता से भर जाया करता था, अब विपश्यना के दैनिक अभ्यास के कारण वे क्षीण होने लगे। सबसे बड़ी जानकारी यह हुई कि इस विद्या में मुझे कोई दोष नजर नहीं आया। सर्वथा निर्दोष ही निर्दोष। कोई हानि नजर नहीं आयी। सर्वथा लाभ ही लाभ।

पहले ही शिविर में मुझे विपश्यना इतनी शुद्ध लगी कि जहां तक साधना का प्रश्न है मुझे किसी दूसरी ओर देखने तक की आवश्यकता नहीं रही। मेरी आध्यात्मिक खोज का पूर्ण समाधान हो गया। मैं इस विद्या में पकने के लिए सुबह-शाम नित्य नियमित

एक-एक घंटे ध्यान करता रहा और साथ-साथ साल में कम-से-कम एक बार दस दिन का शिविर लेता रहा। कभी एक महीने का लंबा शिविर भी लिया, जिससे कि यह विद्या स्वानुभूति द्वारा गहराई से समझ में आने लगी। यह नितांत न्यायसंगत और धर्मसंगत लगी, व्यावहारिक और वैज्ञानिक लगी। इसमें अंधविश्वास के लिए रंचमात्र भी अवकाश नहीं दिखा। गुरुदेव कहते हैं या बुद्ध ने कहा है या तिपिटक में लिखा है इसलिए अंधश्रद्धा से मान लेने का कहीं कोई आग्रह नहीं। जो कहा गया उसे बुद्धि के स्तर पर समझो और फिर अनुभूति के स्तर पर जानो, तब स्वीकार करो। बिना जाने, बिना समझे, बिना अनुभव किये, अंधेपन से स्वीकार मत करो।

आर्यसमाज ने मुझे बुद्धिवादी बनाया और अंधविश्वासों से दूर हटाया। यही जीवन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। पर विपश्यना तो इससे कहीं आगे बढ़ गयी। बुद्धिजन्य शुष्क दार्शनिक विवादों और आर्द्र भक्ति के भावावेश से विमुक्त करके इसके आध्यात्मिक क्षेत्र का यथार्थ अनुभव करना सिखाया। जितना-जितना सत्य अनुभूति पर उतरा उतना-उतना स्वीकारते हुए आगे बढ़ता गया और उससे सूक्ष्मतर सत्यों को अनुभूति पर उतारता गया। जितना-जितना अनुभूति पर उतरा उसे स्वीकारते हुए यह जांचता गया कि मनोविकार दुर्बल हो रहे हैं या नहीं! उनका निर्मूलन हो रहा है या नहीं! वर्तमान के प्रत्यक्ष सुधार को महत्त्व देने वाली यह शिक्षा युक्तियुक्त लगी। यह स्पष्ट समझ में आने लगा कि वर्तमान सुधर रहा है तो भविष्य अपने आप सुधरेगा। लोक सुधर रहा है तो परलोक सुधरेगा ही। यह भी खूब समझ में आने लगा कि अपने मन को मैला करने की शतप्रतिशत जिम्मेदारी स्वयं अपनी है। कोई बाह्य अदृश्य शक्ति इसे क्यों मैला करती भला? अतः इसे सुधारने का दायित्व भी अपना ही है। गुरु की कृपा इतनी ही है कि उसने बड़ी करुणा से हमें मार्ग आख्यात कर दिया। कदम-कदम चलना तो स्वयं हमें ही पड़ेगा। कोई अन्य हमें कंधे पर उठा कर मुक्त अवस्था तक पहुँचा देगा, इस धोखे से सर्वथा मुक्ति मिली। यह सच्चाई अनुभूति के स्तर पर स्पष्ट होती चली गयी।

इस विद्या ने अदृश्य देवी-देवताओं के प्रति घृणा या द्वेष जगाना नहीं सिखाया, बल्कि उनके प्रति मैत्रीभाव रखना सिखाया। **अपनी मुक्ति अपने हाथ, अपना परिश्रम अपना पुरुषार्थ;** के भाव ने अहंभाव नहीं जगने दिया बल्कि अपनी जिम्मेदारी के प्रति विनम्र सजगता ही जगायी। परावलंबन के स्थान पर स्वावलंबी होने का बोध कल्याणकारी लगा। **'स्वावलंब की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष';** किसी कवि के ये बोल स्मरण होते ही तन मन पुलकायमान हो उठा। अतः जहां तक साधना का प्रश्न है, संदेह के लिए रंचमात्र भी गुंजाइश नहीं रही। संदेह होता भी क्यों? प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? प्रत्यक्ष लाभ जो हो रहा था। जीवन ही बदल गया। जैसे एक नया जन्म हुआ।

मुझे लगा कि द्वितीय बुद्ध शासन को आरंभ करने वाला प्रथम वर्ष मेरे सौभाग्य का सूर्योदय बन कर आया और प्रथम बुद्ध शासन का अंतिम वर्ष मेरे लिए इस भाग्योदयी सूर्य के शुभागमन की पूर्व सूचना देता हुआ प्रत्यूष की लालिमा लेकर आया। मैं धन्य हुआ।

–स. ना. गोयन्का

समतावान बनें

–श्री नटवरलाल एच. पारिख

बयालीस वर्ष की आयु में, अच्छे गृहस्थ का जीवन जीते हुए मेरे मन में चित्त को निर्मल करने वाले पथ पर चलने की प्रबल मनोकामना जागी। यह इच्छा और बलवती बन गयी जब एक संत ने मुझे कहा, "आध्यात्मिक पथ पर मन को निर्मल किये बिना कोई प्रगति नहीं की जा सकती है।" इन शब्दों को सुन कर मैं मन को निर्मल करने वाली विधि की खोज में जुट गया।

श्री गोयन्काजी द्वारा सिखायी जाने वाली विपश्यना साधना के बारे में मुझे दो मित्रों ने अवगत कराया, परंतु उस समय मैं विधि को सीखने हेतु उत्साहित नहीं हुआ। लेकिन जब मेरा एक और मित्र शिविर में सम्मिलित हुआ तथा एक महीने के भीतर ही उसने दूसरे शिविर में शामिल होने की इच्छा जाहिर की तब मैंने सोचा कि निश्चय ही इस साधना विधि में कुछ उत्तम बात है। प्रमुख विचारणीय तथ्य यह था कि मेरा यह मित्र एक व्यापारी था जिसके लिए समय एवं धन का प्रचुर महत्त्व होता है, तथापि इनको वह विपश्यना साधना शिविर में सम्मिलित होने के लिए त्यागने को तैयार था।

मैंने प्रथम शिविर जुलाई, १९७२ में नासिक में किया तथा इसके तत्काल बाद ही एक और लघु शिविर में सम्मिलित होने हेतु उत्साहित हुआ। प्रथम शिविर में हालांकि साधना विधि की मात्र एक झलक मिलती है परंतु मुझे ऐसा लगा कि इसी अनुपम अनुभव की तो मैं खोज कर रहा था। जीवन में प्रथम बार मैं वास्तव में ध्यानी बना था; यथार्थतः अंतर्मुखी होकर स्वयं का निरीक्षण करता हुआ।

इस सकारात्मक अनुभूति के उपरांत भी मैं परीक्षण द्वारा इस विधि को कसौटी पर उतारे बिना अपनाना नहीं चाहता था। इसलिए तीन महीने तक घर पर रह कर अभ्यास करने तथा इसके उपरांत श्री गोयन्काजी के सान्निध्य में देश में आयोजित विभिन्न शिविरों में लगातार तीन महीनों तक सम्मिलित होकर गंभीरतापूर्वक साधना करने का मैंने निश्चय किया। इस अवधि के समाप्त होने पर मुझे पूर्ण विश्वास हुआ कि चित्त को गहराई तक विकार विमुक्त कर, परिशुद्ध करने की यह एक अनोखी साधना विधि है। अब विपश्यना मेरे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गयी है और यह कोरा कर्मकांड नहीं, अपितु जीवन जीने की कला है।

साधना अभ्यास के दौरान जागी अनुभूतियों की यद्यपि कोई तुलना अथवा किसी प्रकार का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए परंतु उचित समय पर इन्हें उजागर करने से, इस पथ पर अग्रसित साधकों में प्रेरणा तथा उत्साह जगाने में मदद मिलती है। ध्यान रहे कि इन सभी अनुभूतियों को प्राप्त करने की कोई धारणा न बना ले, अन्यथा ये साधक की प्रगति में बाधक बन जायँगी। कुछ उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट करेंगे।

एक साधिका जिसने २० या २५ शिविर किये थे, कहीं पढ़ा कि जब कोई नासिका के नीचे तथा ऊपर वाले होठ के ऊपर एक छोटे से स्थान पर चित्त की एकाग्रता निरंतर बनाये रखता है तो उसे प्रकाश का दर्शन होता है तथा गर्माहट का अनुभव होता है। इस साधिका को ऐसी कोई अनुभूति नहीं हुई थी, अतः वह दुःखी होकर मुँह लटकाये मेरे पास आयी।

वह चिंतित थी क्योंकि उसे कोई एक अपेक्षित अनुभव नहीं हुआ था। यह विपश्यना नहीं है। अनेक शिविरों मे सम्मिलित होने के उपरांत भी यह साधिका समता खोकर पूर्व निर्धारित किन्हीं विशेष अनुभूतियों को अन्य अनुभूतियों से ज्यादा महत्त्व दे रही थी।

स्वयं के अनुभव द्वारा प्राथमिक तौर पर मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार से संवेदनाओं का उदय होता है, कुछ समय उनका ठहराव जैसा प्रतीत होता है और किस भांति वे अस्त हो जाती हैं। कुछ और अभ्यास के उपरांत जो संवेदनाएं कुछ समय के लिए एक स्थिति में ठहरी हुई प्रतीत होती हैं, उनका भी विघटन होने लगता है तथा हमें इन संवेदनाओं का द्रुत गति से उत्पाद-व्यय अनुभव होने लगता है।

जब शरीर में कहीं अत्यंत कष्टदायक पीड़ा का अनुभव होता है, उस समय स्वाभाविक रूप से हमारी तृष्णा (कामना) जागती है कि यह पीड़ा जल्दी समाप्त हो जाय। यद्यपि हमें बार-बार यह स्मरण दिलाया जाता है कि यह 'अनिच्च' (अनित्य) है, परंतु इसके बावजूद भी पीड़ा कायम रहती है। जब एक घंटा, दो घंटे, दो दिन, यहां तक कि दस दिन बीत जाने पर भी यह कायम रहती है, तब हम घबरा उठते हैं कि यह तो समाप्त ही नहीं हो रही है। मेरे अनुभव के अनुसार ऐसी एक तीव्र पीड़ा लगभग दो वर्ष तक मेरे शरीर पर कायम रही। मेरी पीठ के ऊपरी भाग पर लगभग आठ इंच लंबी, छः इंच चौड़ी तथा तीन चौथाई इंच मोटी सतह की एक कठोर पट्टी का अनुभव होता था। यह इतनी सख्त थी कि ध्यान में बैठते ही यहां भयानक पीड़ा आरंभ हो जाती थी। ध्यान नहीं करते समय इस पीड़ा की अनुभूति नहीं रहती थी। मैं इसे धैर्यपूर्वक समता बनाये हुए देखता रहता था, बिना इस कामना के कि यह खत्म हो जाय। किंतु यह दो साल तक टिकी रही। कई बार इस हिस्से पर इतनी गर्माहट का अनुभव होता कि जैसे इस क्षेत्र पर चपाती रख कर सेंकी जा सकती हो।

यह कठोरता धीरे-धीरे पिघल कर, द्रव बन कर इसी क्षेत्र में ऐसे प्रवहमान हुई जैसे किसी गर्म पानी की थैली में-से गर्म जल प्रवाहित होता है। यह अनुभूति लगभग चार से पांच महीनों तक बनी रही; उसके बाद यह टुकड़े-टुकड़े होकर चिनगारियों में परिवर्तित हो गयी मानो कोई सक्रिय ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। यह नारकीय ज्वाला की भांति कुछ दिनों नहीं, बल्कि कई महीनों तक धधकती रही। धीरे-धीरे यह ज्वालामुखी की भांति ही उपशांत तो हो गयी किंतु यहां का क्षेत्र इस कदर संवेदनशील बन गया कि जब भी शरीर के अंदर या बाहर कुछ घटित होता, तत्काल ही इस क्षेत्र में प्रतिक्रिया महसूस होती और यह संकेत मुझे श्री गोयन्काजी द्वारा बतायी गयी निजी सचिव की कहानी के अनुसार सजग-सचेत हो जाने की चेतावनी स्वरूप कार्य करता है।

हर एक को इसी प्रकार का अनुभव हो, इसकी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। ध्यान रखने की मुख्य बात यह है कि तीव्र, घनी तथा स्थूल संवेदनाएं जो "कुछ समय स्थित रहने" जैसी प्रतीत होती हैं उनका "कुछ समय स्थित रहने" का अर्थ कुछ मिनट, घंटे अथवा कुछ दिन हो, यह आवश्यक नहीं है बल्कि ये वर्षों तक अथवा पूर्ण जीवनकाल तक भी स्थित रह सकती हैं। अतः बहुत धैर्य तथा शांति के साथ समतापूर्वक दृष्टाभाव से इन्हें देखते रहना है।

एक अन्य अनुभव जो साधकों हेतु मददगार हो सकता है, वह यह था कि दसवें अथवा ग्यारहवें शिविर के दौरान मुझे नासिका के नीचे तथा ऊपर वाले होंठ के ऊपर वाले क्षेत्र में कोई भी संवेदना नहीं मिली तथा इसी प्रकार शरीर पर कहीं भी ७-८ दिनों तक कोई संवेदना का अनुभव नहीं हुआ। इस स्थिति में भी मैंने समता बनाये रखी। इन ७-८ दिनों के दौरान मैं आनापान का अभ्यास करता रहा। कोई शिकायत नहीं, किसी के पीछे सलाह-मशविरे हेतु भागने की आवश्यकता नहीं; केवल जो है उसे समतापूर्वक देखते रहना है।

बहुत से शिविरों में सम्मिलित होने तथा धर्मदान में गोयन्काजी के सहायक के रूप में कार्यकरते हुए लगभग ७-८ वर्ष की साधना के उपरांत एक शिविर के दौरान मेरे मन में शिविर अनुशासन हेतु बनायी गयी आचार-संहिता एवं नियमों के प्रति गहरा द्वेष उपजा। यह द्वेष प्रथम दिन पहली बैठक में प्रारंभ हुआ तथा इतना गहरा था कि एक पल हेतु भी मेरे लिए आनापान करना संभव नहीं था। यह पूरे दो दिनों तक बना रहा। शिविर के दौरान मैं साधकों को सलाह देता रहा हूं कि जब भी कोई विकार जागे तब आनापान पर लौट आयें और अब ऐसा समय था जब मैं स्वयं कठिनाई में था।

साधारणतः मैं इन मुश्किलों के हल खोज लेता हूं जो मेरे सम्मुख आती हैं। अब प्रश्न यह था कि इस अवस्था में क्या करना है? आनापान नहीं कर पा सकने के बावजूद मानस में कोई चिंता या तनाव नहीं था। कुछ घंटे शांति से बिना कुछ किये बैठे रहने के उपरांत तीसरे दिन मैंने पाया कि प्रतिरोध समाप्त हो चुका था। शेष रहे दिनों का सदुपयोग करते हुए मैं सहजता से उत्साहपूर्वक साधना का अभ्यास कर सका।

उपरोक्त सभी अनुभवों ने मुझे सिखाया कि किस प्रकार धैर्य से, समतापूर्वक विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना चाहिए। मंगल कामना है कि धर्म मार्ग पर चलने वाले सभी साधकों के लिए मेरे ये अनुभव खूब सहायक हों!

उत्तरदायित्व परिवर्तन

१-२. श्री जयंतीलाल एवं श्रीमती कमला ठक्कर, गांधीधाम-- दक्षिण गुजरात की सेवा

नए उत्तरदायित्व

आचार्य

१. श्री सुधाकर फुंदे, मुंबई-- धम्मविपुल एवं जे.एन.पी.टी. सहित नई मुंबई की सेवा में क्षेत्रीय आचार्य की सहायता

२-३. श्री गोपाल शरण एवं श्रीमती पुष्पा सिंह, लखनऊ-- धम्मलक्खण एवं धम्मसुवत्थी की सेवा

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री जीतेंद्र ठक्कर, थरा-- धम्मदिवाकर की सेवा में नियुक्त आचार्य की सहायता

२. श्रीमती सबरीना कटकम, हैदराबाद

३. श्रीमती आशा अरोरा, दिल्ली

४. श्रीमती सुमेधा वर्मा, पुणे

५-६. श्री नरोत्तम एवं श्रीमती रजनीबेन मेहता, ुज

धम्मसोत पर नव-निर्मित पगोडा का उद्घाटन

विपश्यना केंद्र, धम्मसोत (सोहना- दिल्ली) पर १०८ शून्यागार वाले चैत्य का नव-निर्माण हुआ है। इन शून्यागारों को उपयोग में लाने के पूर्व **रविवार,** दि. **१२ मार्च,** २००६ को **सुबह ९ से ११ बजे** तक सामूहिक साधना एवं मंगल मैत्री का कार्यक्रम रखा गया है, जिसमें स ी साधक सादर आमंत्रित हैं। **संपर्क-** विपश्यना केंद्र, राहका गांव, वल्ल ागढ़-सोहना रोड, सोहना, जि. गुड़गांव. फोन- ०१२४-२२६००६६, २२६००७७.

ग्लोबल पगोडा पर पूज्य गुरुजी के सान्निध्य में एक दिवसीय शिविर

१९ मार्च २००६ को होने वाले एक-दिवसीय शिविर के लिए ग्लोबल विपश्यना फाऊंडेशन असीम प्रसन्नता के साथ आपको आमंत्रित करता है। पू. गुरुजी इस शिविर के दौरान उपस्थित रहेंगे। (पिछले शिविर में पू. गुरुजी शल्यचिकित्सा के कारण उपस्थित नहीं हो सके थे।)

मुख्य पगोडा के **डोम के भीतर** यह पहला एक-दिवसीय शिविर होगा।

इस डोम को जल्द से जल्द पूरा करने के लिए सारे प्रयत्न किये जा रहे हैं। केवल पत्थरों से बना हुआ तथा बिना किसी स्तंभ के आधार पर खड़ा हुआ यह विश्व का सबसे बड़ा डोम स्ट्रक्चर होगा। कृपया इस बात का ख्याल रखें कि १९ मार्च के पहले यह डोम पूरा नहीं होगा, परंतु निर्माण कार्य उस स्थिति तक अवश्य पहुँच चुका होगा जो साधकों को यह स्पष्ट कर देगा कि डोम पूरा होने के बाद किस तरह दिखेगा। जो भी साधक/साधिका यहां ध्यान करते हैं वह इस ऐतिहासिक वास्तु के शुद्ध वातावरण का संवर्धन करते हैं।

दिनांक : रविवार १९ मार्च २००६, **समय:** सुबह ११:०० से सायं ५:००

स्थान: ग्लोबल पगोडा का मुख्य डोम, धम्मपत्तन, गोराई, मुंबई

मुंबई के बाहर से आने वाले साधकों/साधिकाओंसे निवेदन है कि अपने आने की पूर्व सूचना प्रबंधकर्ताओं को अवश्य दें ताकि आपके नहाने तथा नाश्ते आदि का प्रबंध किया जा सके।

संपर्क : श्री डेरेक पेगाडो, फोन: (०२२) २८४५२२६१, २८४५२१११

इस बात का ध्यान रखेंगे कि ग्लोबल पगोड़ा पर रात को रहने की व्यवस्था नहीं है। इसलिए जो साधक/साधिकाएंएक दिन पहले आना चाहते हैं उन्हें अपने रहने की व्यवस्था अन्य किसी स्थान पर करनी होगी।

मनीऑर्डर संबंधी आवश्यक सूचना

जो लोग 'विपश्यना' पत्रिका के लिए अपना शुल्क मनीऑर्डर से भेजते हैं, वे कृपया मनीऑर्डर फार्म पर सबसे नीचे **संदेश** की जगह (दोनों ओर) अपना **पूरा *नाम-पता* और *संदेश* साफ-साफ** अवश्य लिखें। पोस्ट वाले तेजगति से भेजने के लिए इसे पुनः टाइप करते हैं, जिसमें कुछ भूल होने की संभावना रहती ही है। इसलिए कृपया अधिक सावधानी बरतें। (सं.)

आवश्यकता है

भिलाई के धम्मकेतु विपश्यना केंद्र पर धम्मसेवक, धम्मसेविका एवं व्यवस्थापक की आवश्यकता है। उचित मानदेय दिया जायगा। अपने बारे में विस्तृत जानकारी देते हुए संपर्क करें-- श्री सुरेश कठाने, बी-२६९, सड़क- ५, स्मृति नगर, भिलाई- ४९००२० (छत्तीसगढ़) फोन- ०७८८-२३९१५३९, २४११६१३.

दोहे धर्म के

दिवस बिताए बिलखते, रोते बीती रैन।
धन्य! धर्म ऐसा मिला, पायी मन की चैन॥

धन्य! धर्म का तेज बल, दुर्जन होय निहाल।
हत्यारा अर्हत हुआ, धन्य! अंगुलीमाल॥

जो चाहे दुखड़े मिटें, रहे सदा खुशहाल।
तन से मन से वचन से, शुद्ध धर्म ही पाल॥

हिंदू हो या बौद्ध हो, मुस्लिम हो या जैन।
शुद्ध धर्म का पथिक हो, रहे सुखी दिन रैन॥

विपदा में ही धर्म की, सही परीक्षा होय।
मन मैला होवे नहीं, तो ही मंगल होय॥

एक शरण है धर्म की, और शरण ना कोय।
सत्य वचन के तेज से, सब का मंगल होय॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा.) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई-४०० ०१८
फोन: २४९३ ८८९३, फैक्स: २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

धन्यभाग गुरुदेवजू, पकड़ी मेरी बांह।
मुक्ति प्रदायक पथ दियो, धरम स्तूप री छांह॥

गुरुवर री करुणा जगी, हुयो किसो कल्याण।
प्यासै नै इमरत मिल्यो, मिल्यो धरम वरदान॥

सतगुरु तो किरपा करी, दियो धरम रो नीर।
धोयां सरसी आप ही, अपणो मैलो चीर॥

सतगुरु दीनी साधना, धोवण चित्त-विकार।
धोतां धोतां आप ही, खुलै मुक्ति रो द्वार॥

धन्य भाग! सावण मिली, पायो निरमळ नीर।
सतगुरु री होयी क्रिपा, धोवां मैला चीर॥

गुरु तो पंथ दिखाणियो, दीन्यो पंथ दिखाय।
मंजिल आपां पूगस्यां, चाल्यां अपणै पांय॥

एक साधक

की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४९, माघ पूर्णिमा, १३ फरवरी, २००६**

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. ५००/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६**/७१. Regn. No. LII/REN/RNP-46/2006-08

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- LII/RNP-WPP-03
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
e-mail: info@giri.dhamma.org
Website: www.vri.dhamma.org